# खण्ड – 5 : आधुनिक समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ

## इकाई – 4 : विखण्डनवाद

**इकाई की रूपरेखा**


5.4.00. उद्देश्य
5.4.01. प्रस्तावना
5.4.02. विखण्डन की पृष्ठभूमि
  5.4.02.1. विखण्डन : एक परिचय
  5.4.02.2. विखण्डन का अर्थ और उद्देश्य
  5.4.02.3. देरिदा का निषेध और परिभाषा की कठिनाई
5.4.03. विखण्डन का आरम्भ
5.4.04. विखण्डन की रणनीति
5.4.05. युग्मक विरोधी और पदानुक्रम का विखण्डन
5.4.06. उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा
  5.4.06.1. लेखन-विज्ञान और शब्दकेन्द्रवाद
  5.4.06.2. उपस्थिति की अनुपस्थिति
  5.4.06.3. विभेदन या डिफ़रांस (Differance)
  5.4.06.4. पदचिह्न या निशान (Trace)
5.4.07. लेखन की प्रतिष्ठा
  5.4.07.1. वाक् बनाम लेखन
  5.4.07.2. वाक् केन्द्रवाद की आलोचना
5.4.08. संरचनावाद का विखण्डन
5.4.09. पाठ से बाहर कुछ नहीं है
5.4.10. पारिभाषिक शब्दावली
5.4.11. पाठ का सारांश
5.4.12. उपयोगी सन्दर्भ
  5.4.12.1. हिन्दी की पुस्तकें
  5.4.12.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें
  5.4.12.3. इंटरनेट स्रोत
5.4.13. अभ्यास के लिए प्रश्न


### 5.4.00. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

5.4.00.1. संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद के बीच भेद को समझ पाएँगे।

5.4.00.2. विखण्डन का अर्थ और परिचय जान सकेंगे।

5.4.00.3. विखण्डन के तरीक़ों और निहितार्थों को समझ सकेंगे।

5.4.00.4. विखण्डनात्मक आलोचना में प्रयुक्त विभिन्न पदबन्धों का अर्थ समझ सकेंगे।

**5.4.01. प्रस्तावना**

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 'आधुनिक समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ' खण्ड में अभी तक आप संरचनावाद, शैलीविज्ञान और उत्तर-आधुनिकतावाद का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में आप उत्तर-संरचनावाद की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति 'विखण्डन' के बारे में पढ़ेंगे।

हम जानते हैं कि संरचनावाद 1950 से 1970 तक लगभग दो दशकों तक वैचारिक और साहित्यिक चिन्तन के केन्द्र में रहा। 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों में एक नए आन्दोलन ने करवट लेना शुरू कर दिया था, जिसने अपना नाम भी संरचनावाद से लेते हुए 'उत्तर-संरचनावाद' रखा। जहाँ एक ओर उत्तर-संरचनावाद ने संरचनावाद के कुछ विषयों और विचारों को आगे बढ़ाते हुए उन्हें तार्किक परिणति तक पहुँचाया, वहीं दूसरी ओर संरचनावाद की कई मान्यताओं से मतभेद उत्तर-संरचनावाद के पनपने का मुख्य आधार रहा है। वस्तुत: उत्तर-संरचनावाद का सैद्धान्तिक ढाँचा मूलभूत रूप से संरचनावाद से इतना अलग है कि उसे एक स्वतंत्र आन्दोलन का नाम देना ही तर्कसंगत लगता है। उत्तर-संरचनावाद ने संरचनावाद की कुछ मान्यताओं को स्वयं उसके विरुद्ध खड़ा कर दिया और ऐसे वैचारिक दोषों को उजागर किया जिन्हें संरचनावाद सुधार नहींसका।

विखण्डन इस दिशा में अधिक परिवर्तनवादी और आलोचनात्मक दृष्टिकोण पेश करता है। विखण्डन इस अर्थ में पूरी तरह उत्तर-संरचनावादी चिन्तन है कि वह संरचना के विचार को सिरे से ख़ारिज करता है। वह इस मान्यता पर ही सवाल उठाता है कि अर्थ की संरचनाएँ मस्तिष्क की कुछ आन्तरिक अभिरचनाओं की प्रतिक्रियाओं के अनुरूप होती हैं जो बौद्धिकता की सीमाओं का निर्धारण करती हैं। विखण्डन मस्तिष्क, अर्थ और उन्हें जोड़ने वाली विधि के दावों को निरस्त करता है।

**5.4.02. विखण्डन की पृष्ठभूमि**

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के यूरोपीय चिन्तन पर संरचनावाद, घटना-क्रिया विज्ञान, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद आदि दार्शनिक उपागमों का प्राधान्य था। संरचनावाद मुख्य सांस्कृतिक सिद्धान्त था जिसका प्रभाव अन्य अनुशासनों पर व्यापक रूप से पड़ा। अस्तित्ववाद ने जहाँ वैयक्तिकता पर बल दिया तो संरचनावाद ने सामाजिक संरचना के ताने-बाने का विश्लेषण करने पर ध्यान दिया और संरचना को ही वास्तविक और अर्थवान बताया। संरचनावाद ने सार्वभौमिक संरचनाओं का अध्ययन करते हुए व्यक्ति और समाज को जोड़ने का प्रयास

किया। यहाँ तक विखण्डन संरचनावाद से सहमत है। कुछ राजनीतिक चिन्ताओं पर भी विखण्डन की संरचनावाद से सहमति है। लेकिन संरचनावाद द्वारा प्रस्तुत सार्वभौमिक संरचनाओं की आदर्शनात्मक अवधारणा से विखण्डन का विरोध है। सार्वभौमिक संरचनाओं की खोज के प्रयास में संरचनावाद समाज की आलोचना करने और उसे बदलने की दिशा में कोई योगदान नहीं कर पाया और समाज में यथास्थिति बनाए रखने और संरचनाओं को वैधता प्रदान करने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मानता रहा।

अन्य विद्वानों की तरह देरिदा भी 1950 और 60 के दशक में प्रभावशाली चिन्तन संरचनावाद से प्रभावित हुआ। उसे सॉस्सुर के संरचनात्मक भाषा विज्ञान ने विशेष प्रभावित किया। एक विवेचन विधि के रूप में विखण्डन 'उपस्थिति' को समझने या उसकी व्याख्या करने में दर्शन की विफलता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

### 5.4.02.1. विखण्डन : एक परिचय

दार्शनिक ज़्यॉक देरिदा द्वारा 1967 में मूल रूप से फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित तीन ग्रन्थों (इनके अंग्रेज़ी अनुवाद बाद में 'Of Grammatology' (1974), 'Writing and Difference' (1978), तथा 'Speech and Phenomena' (1973) शीर्षकों से प्रकाशित हुए) से विखण्डन की शुरुआत हुई, जिसे अमेरिका के येल विश्वविद्यालय के विद्वानों ने तुरंत ही अपना लिया और विखण्डन दार्शनिक और साहित्यिक आलोचना का एक आन्दोलन बन गया।

देरिदा ने दावा किया कि मुख्य पाश्चात्य चिन्तन भाषा की असीमित अस्थिरता को दबाकर सत्य और निश्चितता स्थापित करता है। यह शब्दकेन्द्रवादी परम्परा ऐसे पूर्ण स्रोत या अर्थवत्ता की खोज करती है जो अर्थ की अनिश्चितताओं को स्थिरता प्रदान कर सके अथवा उन्हें विमर्श के केन्द्र में स्थापित कर सके। यह कार्य उग्र पदानुक्रम व्यवस्था के माध्यम से परिधि पर स्थित दबाए गए पद पर एक केन्द्रीय पद को प्रमुखता से स्थापित करते हुए किया जाता है, उदाहरण के लिए, संस्कृति पर प्रकृति, स्त्री पर पुरुष और लेखन पर वाक् आदि। वाक् की प्रामाणिकता के आधार पर लेखन को वाक् से दोयम या निम्न मानने का विचार मुख्य रूप से देरिदा की ध्वंसात्मक रणनीति के निशाने पर है। इस रणनीति के अन्तर्गत वह अवधारणाओं के पदानुक्रम भंग करके उसे उलट देता है। इस प्रकार देरिदा यह दिखाता है की दमित या हाशियाकृत पद केन्द्रीय पद में समाहित होता है। सॉस्सुर के 'संकेत' सिद्धान्त की आलोचना करते हुए देरिदा कहता है कि वाक् को अर्थ के प्रामाणिक स्रोत का जो स्थाई रूप से स्वयंभू स्तर दिया गया है वह भ्रामक है। वह स्पष्ट करता है कि है भाषा आन्तरिक विभेदों की स्वयंपूर्ण व्यवस्था के रूप में कार्य करती है न कि सुनिश्चित पदों या उपस्थितियों के आधार पर। लेखन को अविश्वसनीय इसलिए माना जाता है क्योंकि वह किसी प्रमाणीकृत वाणी को प्रदर्शित नहीं करती, लेकिन भाषा तो आन्तरिक विभेदों की स्वयंपूर्ण व्यवस्था है इसलिए तार्किक रूप से लेखन वाक् का पूर्ववर्ती है।

आरम्भिक रूप में विखण्डन का लक्ष्य संरचनावाद की आलोचना था, लेकिन शीघ्र ही अमेरिका के येल विश्वविद्यालय और अन्य देशों में साहित्य-अध्ययन के क्षेत्र में उत्साहपूर्वक इसे अपनाया जाने लगा। साहित्यिक आलोचकों के उत्साह का एक कारण तो यह था कि यह परम्परागत रूपकात्मक और आलंकारिक भाषा और आलोचना की साहित्यिक समस्याओं को दार्शनिकों और इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत सत्य के दावों से अधिक महत्त्व देता है, और दूसरा यह कि विखण्डन पाठ और कृति की अन्तहीन व्याख्याओं के द्वार खोलता है। पॉल द मान, बारबारा जॉन्सन, जे. हिल्स मिलर और जेफ्री हार्टमैन आदि ने अपने लेखन में विखण्डनात्मक विधियों को लागू किया तथा लेखकों के रचनात्मक उदेश्य और पाठ में बाह्य दुनिया को अर्थ के स्रोत के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिए जाने को चुनौती दी। देरिदा के प्रश्नों को आगे बढ़ाते हुए इन विद्वानों ने साहित्य और आलोचना की विभाजन-रेखा पर भी सवाल उठाए।

## 5.4.02.2. विखण्डन का अर्थ और उद्देश्य

विखण्डन अनुसंधान की ऐसी विधि है जो इस बात पर बल देती है कि सभी तरह का लेखन भ्रम और विरोधाभास से भरा हुआ होता है। लेखक अर्थ-संचार के किसी भी तरीक़े से इन विरोधाभासों को समाप्त नहीं कर सकता। विखण्डन भाषा के किसी भी रूप में वास्तविक और पूर्ण अर्थ के संचार की किसी भी सम्भावना से इन्कार करता है। विखण्डन संरचनावाद की आलोचना है। देरिदा सॉस्युर के भाषा विज्ञान के आधारों को गिराने के लिए उन्हें अपने विवेचन का विषय बनाता है। वह किसी भी संरचना में केन्द्र के केन्द्रित होने और स्थिर होने पर सवाल खड़े करता है तथा केन्द्र और परिधि के मुक्त संचरण की वकालत करता है।

किसी विमर्श का विखण्डन करना यह दर्शाना है कि यह विमर्श स्वयं द्वारा प्रस्तुत तर्क का किस तरह अवमूल्यन करता है। एक तरीक़ा यह है कि उस तर्क की संरचना को देखा जाए, क्योंकि देरिदा के अनुसार यह संरचना उस पदानुक्रम का परिणाम होती है जिसमें दो विरोधी पदों को उच्च और निम्न के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विखण्डन उच्चता की सीमाओं को प्रकट करते हुए इस क्रम व्यवस्था को उलट देता है तथा उच्च को निम्न बना देता है। यह बदला हुआ पदानुक्रम फिर विखण्डन की प्रक्रिया के अधीन आ जाता है और उसमें भी परिवर्तन हो जाता है। विखण्डन एक प्रकार से अस्थिरीकरण की स्थायी क्रिया है। विखण्डन का अर्थ और मक़सद यह दिखाना है कि सभी प्रकार के पाठों, संस्थाओं, परम्पराओं, समाजों, विश्वासों और व्यवहारों का कोई परिभाषा योग्य अर्थ नहीं होता है। उनका कोई निर्धारण योग्य उद्देश्य भी नहीं होता है, बल्कि वे किसी भी उद्देश्य से ऊपर और अपनी वर्तमान सीमाओं से परे जाने वाले होते हैं। जब भी हम वस्तुओं के अर्थ स्थिर कर देते हैं और उन्हें पारम्परिक स्थानों पर बाँध देते हैं, तब स्वयं वस्तु वहाँ से निकल कर कहीं दूर चली जाती है। अर्थ और उद्देश्य चीज़ों को समाविष्ट और सुसम्बद्ध करने का ढंग है। विखण्डन इन सभी सीमाओं को विस्तृत करने, इन्हें लाँघने और इनकी समग्रता को बाधित करने तथा उसे विशृंखलित करने का प्रयास है। विखण्डन का अर्थ तोड़-फोड़ या विध्वंश करना नहीं है, बल्कि यह भाषा के उन गुप्त जान पड़ने वाले प्रकार्यों को अनावृत्त करता है जो भाषायी और पाठीय अर्थवत्ता के आधार का निर्माण करते हैं।

**5.4.02.3. देरिदा का निषेध और परिभाषा की कठिनाई**

आम तौर पर विखण्डन को परम्परा-भंजक चिन्तन माना जाता है। विखण्डन को एक दार्शनिक विचार-सरणि, एक राजनीतिक पहल, बौद्धिक भावधारा और अध्ययन की एक प्रणाली आदि कई रूपों में देखा गया है। बौद्धिक वाद-विवाद में अक्सर विखण्डन का प्रयोग नास्तिवाद या नकारात्मक संदेहवाद के अर्थ में भी किया जाता है। देरिदा कुछ विशिष्ट अवधारणाओं के रूप में अर्थ प्राप्ति के विचार का ही विखण्डन करना चाहता था। विखण्डन को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास देरिदा के चिन्तन की मूल भावना के विरुद्ध है। देरिदा ने कहा है कि कोई भी कथन जैसे कि विखण्डन 'अ' है या विखण्डन 'अ' नहीं है, स्वत: ही बात के मर्म से भटक जाता है और मर्म से भटका हुआ कथन असत्य और मूल्यहीन होता है।

विखण्डन के सम्बन्ध में सबसे सबसे पहली और बड़ी समस्या उसकी परिभाषा की कठिनाई है। देरिदा का दावा है कि उसका समस्त लेखन विखण्डन को परिभाषित करने का प्रयास है। विखण्डन को समझना अनिवार्य रूप से जटिल और कठिन कार्य है क्योंकि यह उस भाषा की तीव्र आलोचना करता है जो इसे स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। देरिदा विखण्डन का सकारात्मक से अधिक नकारात्मक विवरण प्रदान करने में रुचि लेता है। उसके अनुसार विखण्डन को समझने के लिए यह जानना चाहिए कि वह क्या नहीं है अथवा उसे क्या नहीं होना चाहिए। देरिदा ने इसे परम्परागत अर्थों में विश्लेषण या आलोचना का तरीक़ा या एक पद्धति कहे जाने का भी विरोध किया है। ऐसा नहीं है कि देरिदा के विखण्डन में विश्लेषण, आलोचना या पद्धति की कोई विशेषता नहीं है, बल्कि बहुत है, लेकिन देरिदा विखण्डन को इनसे दूर रखता है ताकि उन तक वापस पहुँचने की आवश्यकता बनी रहे। परिभाषा और विवरण के निषेध के माध्यम से देरिदा सभी दार्शनिक अवधारणाओं को चुनौती देता है और उन पर आक्रमण के अपने औज़ार तेज़ करता है।

**5.4.03. विखण्डन का आरम्भ**

विखण्डन का प्रादुर्भाव एडमंड हुसेर्ल और मार्टिन हेडेगर के घटना-क्रियाविज्ञान (फ़िनॉमिनॉलॅजि) की फ्रांसीसी दार्शनिक चिन्तन-परम्परा से हुआ है। घटना-क्रियाविज्ञान का लक्ष्य 'चेतना' के दार्शनिक विश्लेषण के आधार पर ऐसे स्वत:सिद्ध, वस्तुनिष्ठ 'सार' की खोज करना था जो हर तरह के ज्ञान-विज्ञान का आधार हो। हुसेर्ल की आलोचना में हेडेगर 'विश्व-चेतना' से 'अस्तित्व' के ज्ञान की तरफ बढ़े, जिसे विश्व-चेतना का पूर्वज्ञान और पूर्वदशा माना गया। ज़्यॉक देरिदा ने हेडेगर और हुसेर्ल के साथ-साथ सार्त्र के अस्तित्ववाद की पृष्ठभूमि में अपनी विखण्डनात्मक विधि का विकास किया। देरिदा की विशेष रुचि हेडेगर द्वारा प्रस्तुत 'चेतना की ज्ञानातीत लौकिकता' के विचार में थी, जिसके अन्तर्गत हुसेर्ल की फ़िनॉमिनॉलॅजि में छिपे हुए आदर्शवाद को दिखाया गया तथा अस्तित्व के सार की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया। इसे दुनिया में होने या मनुष्य होने के रूप में 'सांसारिक' घटना-क्रिया समझा गया है।

देरिदा ने विखण्डन शब्द का मूल प्रयोग मार्टिन हेडेगर की अवधारणा 'डिस्ट्रक्शन' (ध्वंश) के अनुवाद के रूप में किया था। हेडेगर का शब्द 'डिस्ट्रक्शन' ऐतिहासिक और परम्परागत रूप से 'शब्द' पर थोपी गई श्रेणियों और अवधारणाओं को समझने की प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त हुआ था। वर्ष 1966 में देरिदा ने अमेरिका के जॉन होपकिंस विश्वविद्यालय में संरचनावाद पर आयोजित एक विचार-गोष्ठी में एक व्याख्यान दिया, जिसका विषय था –"स्ट्रक्चर, साईन एण्ड प्ले इन द डिस्कोर्स ऑफ़ द ह्यूमन साईन्सेज़"। इस गोष्ठी में ज़्यॉक लकां, रोलाँ बार्थ और पॉल द मान जैसे विद्वान उपस्थित थे। तुरंत ही इस व्याख्यान ने साहित्यिक आलोचना और दार्शनिक अनुसंधान के क्षेत्र में हलचल मचा दी। एक ओर देरिदा की तीव्र आलोचना हुई, तो दूसरी ओर समकालीन दार्शनिक और साहित्यिक चिन्तन पर उसके विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। 1967 में फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित देरिदा की पुस्तक "De la grammatologie" 'विखण्डनवाद' का मुख्य आधार है। इस पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद(ऑफ़ ग्रमैटॉलॅजि) 1974 में गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक ने किया। इसमें देरिदा वाक्-लेखन के युग्मक विरोधों का क्रम उलट देता है। यहाँ फर्दीनांद द सॉस्सुर, ज्याँ ज़ाक रूसो और क्लॉद लेवी-स्ट्रॉस सहित अनेक विद्वानों के चिन्तन की बखिया उधेड़ते हुए देरिदा विखण्डन को एक सैद्धान्तिक आन्दोलन के रूप में स्थापित करता है।

विखण्डन भाषा के सूक्ष्म परीक्षण तथा दार्शनिक और साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत तर्कशास्त्र के अध्ययन के आधार पर पाश्चात्य दर्शन के अवधारणात्मक दोषों या विरोधों पर प्रश्न खड़े करता है। इसे दर्शन और साहित्य के अतिरिक्त क़ानून, मनोविश्लेषणवाद, स्थापत्य, नृतत्त्व विज्ञान, नारीवाद, राजनीतिक सैद्धान्तिकी, इतिहास लेखन आदि अनुशासनों में एक परिवर्तनकारी सैद्धान्तिक विमर्श के रूप में देखा जाता है।

### 5.4.04. विखण्डन की रणनीति

विखण्डन उन सभी विमर्शों की आलोचना करने और उन्हें प्रश्नांकित करने की रणनीति है जो मताग्रही और एक पद पर दूसरे पद के वर्चस्व की स्थापनाएँ प्रस्तुत करते हैं। अपनी इस रणनीति के तहत देरिदा अनेक नवसृजित मिश्र और श्लिष्ट पदों के माध्यम से भाषा की अस्थिर प्रकृति और अर्थ की अनिश्चितता को दिखाता है। पाश्चात्य दर्शन और तत्त्वमीमांसा के प्रति देरिदा का यह कठोर और श्लिष्टतापूर्ण रुख़ इस परम्परा को समाप्त करने के लिए और साथ-साथ यह भी दिखाने के लिए है कि यह कार्य भाषा की अस्थिरताओं के बाहर जाकर नहीं किया जा सकता।

देरिदा के विखण्डन को समझने के लिए उसकी सैद्धान्तिकी में प्रयुक्त एक महत्त्वपूर्ण शब्द है 'sous rature' (फ्रांसीसी शब्द), जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'अंडर इरेज़र' (under erasure) किया गया है। हिन्दी में 'विलोपनाधीन' शब्द से इसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि कोई शब्द लिखो, उसे आड़ा-तिरछा काटो (और अब इसे छापो) ताकि लिखा हुआ शब्द मिटाया हुआ लगे, लेकिन दिखाई भी दे और आसानी से पढ़ा जा सके। ऐसा करने के पीछे यह विचार है कि चूँकि यह विशेष शब्द अशुद्ध है, अपूर्ण है या अनुपयुक्त है इसलिए इसे काटा और मिटाया गया है। लेकिन क्योंकि यह आवश्यक शब्द है इसलिए इसे रखा गया है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण तरीक़ा देरिदा ने मार्टिन हेडेगर से लिया है। देरिदा इसी प्रविधि से भाषा को भाषा के

विरुद्ध खड़ा करता है। विलोपनाधीन पद के अन्तर्गत परम्परागत शब्दों तक जाने की ज़रूरत का अर्थ यह है कि भले ही ये शब्द समस्यामूलक हैं, लेकिन हमें इनका प्रयोग तब तक करना है जब तक कि इनकी सार्थक पुनर्रचना नहीं कर ली जाती अथवा इनके स्थान पर नए उपयुक्त शब्द नहीं आ जाते।

इस सन्दर्भ में देरिदा का यह विचार भी था कि विखण्डन का सकारात्मक विवरण विखण्डन के विचार को एक साँचे में ढाल लेगा तथा उस खुलेपन को समाप्त कर देगा जिसके लिए विखण्डन को अपनाया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि देरिदा सकारात्मक रूप में, उदाहरण के लिए, विश्लेषण के रूप में, विखण्डन को परिभाषित करता तो विश्लेषण की अवधारणा हमेशा विखण्डन के दायरे से बाहर रहती। ऐसे में विश्लेषण की अवधारणा की आलोचना के लिए विखण्डन के अलावा किसी अन्य दर्शन की आवश्यकता होती।

वस्तुत: किसी भी अवधारणा या विचार को कोई एक स्पष्ट और सकारात्मक नाम या परिभाषा नहीं देना देरिदा की विखण्डनात्मक रणनीति है, जिसके अन्तर्गत वह जानबूझकर उन तत्त्वमीमांसक मान्यताओं की उपेक्षा करता है जो पाश्चात्य चिन्तन के इतिहास के केन्द्र में रही हैं। इसलिए विखण्डन को 'विखण्डनवाद' कहना भी इसे एक व्यवस्था में बाँधना, स्थिरता प्रदान करना और उस शब्दकेन्द्रिक भावबोध में सीमित कर देना है, जो परम्परागत पाश्चात्य चिन्तन की विशेषता है। देरिदा बार-बार यह बताता है कि चीज़ों की कोई स्थिर या व्यवस्थित परिभाषा नहीं दी जा सकती, क्योंकि जिन शब्दों के आधार पर ऐसा किया जाता है उनका अर्थ सदैव परिवर्तनीय और अस्थिर होता है। इनमें स्थानीय सन्दर्भों और पाठों के रंग भरे होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन में हमने दिखा कि विखण्डन किसी भी प्रकार की व्यवस्था को अस्वीकार करता है। फिर भी यहाँ ऐसे अनेक स्वानुभविक शब्द और पदबन्ध हैं जिनसे विखण्डन की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। इनमें प्रमुख हैं – युग्मक विरोधी, शब्दकेन्द्रवाद, उपस्थिति-अनुपस्थित, संकेतक-संकेतित, वाक्-लेखन, डिफ़रांस, खेल, पदचिह्न या निशान आदि। आगे हम इन पदबन्धों के आधार पर ही विखण्डन को समझने का प्रयास करेंगे।

### 5.4.05. युग्मक विरोधी और पदानुक्रम का विखण्डन

देरिदा के अनुसार प्रत्येक दार्शनिक तर्क की संरचना विरोधों के आधार पर हुई है और इस परम्परागत दार्शनिक विरोध में आपस में टकराने और मिलने वाले शब्दों या अवधारणाओं का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व नहीं होता है, बल्कि उनमें एक उग्र पदानुक्रम पाया जाता है। एक अवधारणा दूसरी पर वर्चस्व बना लेती है और प्रमुखता प्राप्त कर लेती है। विरोध का विखण्डन करना एक विशेष समय में पदानुक्रम को उलट देना है। देरिदा के अनुसार विखण्डन किसी रचना को सोपानीकृत विरोधों में स्वाभाविक रूप में उलझा हुआ देखता है। विखण्डित पाठ न केवल इन सोपानीकृत विरोधों को अनावृत्त करता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि विरोधी उच्चतर पद को निम्नतर भी माना जा सकता है।

विखण्डन मानवीय चिन्तन में पदानुक्रम के निर्माण की प्रक्रिया को ही दोषपूर्ण मानता है। विखण्डन हमें चिन्तन या लेखन के किसी दोषपूर्ण ढंग के स्थान पर कोई दोषरहित और सही ढंग नहीं सिखाता है, बल्कि यह

मानवीय चिन्तन की उन सीमाओं को दिखाता है जो भाषा के माध्यम से क्रियाशील रहती हैं । प्रत्येक विखण्डनात्मक कार्यवाही स्वयं के विखण्डन का भी आधार होती है । यद्यपि विखण्डन परम्परागत चिन्तन की पदानुक्रम व्यवस्था को बदलने पर ज़ोर देता है, लेकिन विखण्डन केवल पदानुक्रम को उलटने तक ही सीमित नहीं है । वस्तुत: यह विमर्श की संरचना को समझने का एक तरीक़ा है जो इसके नियंत्रण केन्द्र का पता लगा कर उन आधारहीन धारणाओं की पहचान करता है जिनके आधार पर यह एक विमर्श की तरह कार्य करता है ।

विखण्डन जिन 'विरोधों' को चुनौती देता है, ये विरोध पाश्चात्य दर्शन में बहुत प्राचीन समय से चले आ रहे हैं । ये विरोध युग्म-रूप और पदानुक्रम पर आधारित हैं । ये 'युग्मक विरोधी' या 'युग्मी-युक्ति' (बाइनरी ऑपॅज़िशन) पदबन्धों का जोड़ा होते हैं जिनमें एक पदबन्ध प्रमुख या मौलिक होता है और दूसरा व्युत्पन्न या द्वितीयक, जैसे मन और शरीर, उपस्थित और अनुपस्थित, आन्तरिक और बाह्य, अच्छा और बुरा, मालिक और दास आदि । इन विरोधों को विखण्डित करने का अर्थ है – इनमें मान्य या आरोपित पदानुक्रम की श्रेष्ठता और निम्नता के अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करना । विखण्डन में पाठ के विभिन्न अर्थों, विशेष रूप से भाषा के लाक्षणिक और प्रदर्शनकारी उपयोग पर निर्भर अर्थों, का विश्लेषण करते हुए 'विरोध' को पाठ के उत्पाद या निर्मिति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

'युग्मक विरोधी' एक संरचनात्मक विचार है, जिसके अनुसार विरोधों में सोचना मानव का स्वभाव है । सॉस्युर ने युग्मक विरोधों को भाषा के अवयवों में अर्थ भरने और मूल्य प्रदान करने वाले साधन के रूप में प्रस्तुत किया है । यहाँ भाषा की प्रत्येक इकाई को जो वह नहीं है उसके विरुद्ध परिभाषित किया जाता है । इस प्रकार के वर्गीकरण के कारण शब्द और अवधारणाएँ परस्पर सकारात्मक-नकारात्मक रूप में जुड़ी रहती हैं । उदाहरण के लिए, पुरुष-स्त्री, उपस्थिति-अनुपस्थिति, वाक्-लेखन आदि । देरिदा ने तर्क दिया कि विरोधों की ये संरचनाएँ मनमाने ढंग से रचित तथा अपनी प्रकृति में अस्थिर हैं । ये संरचनाएँ एक दूसरे का अतिक्रमण करती हैं, परस्पर संघर्षरत रहती हैं और अन्तत: पाठ की ये संरचनाएँ स्वयं को पाठ के भीतर ही तिरोहित कर देती हैं । इस अर्थ में विखण्डन संरचनावाद का विरोधी है । विखण्डन संरचनावाद की अधिकांश मान्यताओं को अस्वीकार करता है, युग्मक विरोधों को तो अत्यधिक कठोरता के साथ निरस्त करता है क्योंकि उसके अनुसार ऐसे युग्मक विरोधी सदैव एक शब्द या अवधारणा को दूसरी (संकेतक पर संकेतित) पर तरजीह देते हैं । विखण्डन युग्मक विरोधों पर सवाल खड़े करता है और प्राय: इनके विरोध को खोलने और समाप्त करने का प्रयास करता है । विखण्डन की मान्यता है कि किन्हीं भी दो चीज़ों में वास्तविक अर्थ में कुछ भी एक सा नहीं होता है ।

### 5.4.06. उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा

देरिदा का मानता है कि विशुद्ध अभिव्यक्ति में सदैव निर्देशनात्मक तत्त्व होता है । अभिव्यक्ति में निर्देशन (सूचना) का पूर्ण अभाव नहीं होता है क्योंकि संकेत अपने से पूरी तरह भिन्न चीज़ को नहीं बता सकता । कोई भी संकेतित ऐसा नहीं है जो संकेतक से स्वतंत्र हो । देरिदा के अनुसार अर्थ का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें अर्थ सूचक चिह्न अर्थ से अलग कर लिए जाए । स्वतंत्र संकेतित जैसी किसी चीज़ के अस्तित्व से इन्कार करते हुए

देरिदा सिद्ध करता है कि एक तो कोई भी विशेष संकेत विशेष संकेतित को द्योतित करने वाला नहीं माना जा सकता। दूसरे, संकेतकों की व्यवस्था से बचा नहीं जा सकता। अत: कोई भी निरपेक्ष और अबाधित उपस्थिति नहीं हो सकती है।

देरिदा ने हेडेगर द्वारा अस्तित्व को विशेष महत्त्व दिए जाने से तत्त्वमीमांसा पर पड़ने वाले दोषपूर्ण प्रभाव को पहचान लिया कि अस्तित्व यानी 'उपस्थिति' दर्शन के क्षेत्र में उद्भव और प्रस्थान का अदृश्य बिन्दु या ज्ञानातीत आधारशिला है। चेतना को दिए गए विशेष महत्त्व का आशय 'उपस्थित' को विशेष महत्त्व देना ही है। यहाँ देरिदा ने दार्शनिक विश्लेषण के मुख्य उद्देश्य को पहचान लिया, वह है 'उपस्थिति' की तत्त्वमीमांसा। इस दार्शनिक परम्परा की आलोचना में ही देरिदा को यह क्रान्तिकारी विचार मिला कि भाषा अपने से बाहर की दुनिया के लिए किसी स्थिर और पूर्वानुमेय ढंग का पता नहीं देती है, बल्कि अपने आन्तरिक भेदों का पता देती है।

देरिदा के लिए 'लेखन' एक इन्द्रियानुभविक अवधारणा नहीं है जिसमें एक बोधगम्य व्यवस्था के तहत किसी भौतिक पदार्थ पर कुछ लिखा या अंकित किया जाता है। उसके लिए 'लेखन' उस संरचना का नाम है जो सदैव पहले से ही ट्रेस (पदचिह्न या निशान) द्वारा आबाद है। देरिदा ने अपने लेखन में बार-बार यह दावा किया है कि न केवल सभी पाश्चात्य दर्शन और भाषा के सिद्धान्त, बल्कि भाषा के सभी पाश्चात्य प्रयोग अर्थात् सम्पूर्ण पाश्चात्य संस्कृति शब्दकेन्द्रित (लोगोसेंट्रिक) है। हेडेगर के मुहावरे में देरिदा कहता है कि पाश्चात्य संस्कृति 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' पर आधारित है। विखण्डन की विधि 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' से जुड़ी हुई है। 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' विचार का व्यवस्थापन या गठन और व्याख्या है जो अर्थ के स्थायित्व और आत्म-उपस्थिति पर निर्भर है। यह चिन्तन की मुक्त क्रीड़ा को निष्क्रिय करती है, उसमें अवरोध पैदा करती है, क्योंकि चिन्तन की मुक्त क्रीड़ा पूरी संरचना के लिए ख़तरा या चुनौती बन सकती है। 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' आत्म-परिचय की पूर्ण तत्त्वमीमांसा है जिसमें एक सत्ता कीअन्तर्वस्तु को उसके अस्तित्व के साथ पूर्ण रूप से मिला हुआ माना जाता है। पाश्चात्य दार्शनिकों से देरिदा का विरोध इस बात पर है कि उनकी मान्यताएँ अनिश्चितता पर आधारित हैं। लगभग सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का उद्भव और आधार 'उपस्थिति' है। देरिदा इस उपस्थिति की सम्भावना से इन्कार करता है और उस मुख्य आधार को ही हटा देता है जहाँ से दार्शनिक प्रस्थान करते हैं। देरिदा यह सिद्ध करता है कि विद्यमान या उपस्थित जैसा कुछ नहीं है। विद्यमान को सामान्यत: ज्ञात जगत् की घटना माना जाता है। हम विगत अतीत के बारे में निश्चित तौर पर नहीं जानते, हम भविष्य में क्या होगा या अन्य स्थान पर क्या हो रहा है इस बारे में भी निश्चयपूर्वक नहीं बता सकते, लेकिन हम अपने वर्तमान पर, जो अभी और यहाँ हो रहा है उस पर भरोसा करते हैं। विद्यमान या उपस्थित को चुनौती देकर देरिदा ने प्रत्यक्षवाद और घटना-क्रियावाद दोनों को संकट में डाल दिया है।

### 5.4.06.1. लेखन-विज्ञान और शब्दकेन्द्रवाद

'उपस्थिति' की तत्त्वमीमांसा' की आलोचना मुख्य रूप से 'शब्दकेन्द्रवाद' (लोगोसेंट्रिज़्म) की आलोचना है। देरिदा के अनुसार 'शब्दकेन्द्रवाद' logos ( वाक्, विचार, कानून, या तर्क के लिए प्रयुक्त यूनानी

शब्द) को भाषा और दर्शन का केन्द्रीय सिद्धान्त मानने की प्रवृत्ति है। 'शब्दकेन्द्रवाद' में वाक् भाषा के केन्द्र में होता है न कि लेखन। देरिदा की पुस्तक 'ऑफ़ ग्रमैटॉलॅजि' (देरिदा के अनुसार 'लेखन का विज्ञान') हमारे लेखन के विचारों को वाक् के विचारों के अधीनस्थ होने से मुक्त कर देती है। लेखन-विज्ञान भाषा के उद्भव के अनुसंधान की विधि है जो लेखन के विचार को वाक् के विचार जितना ही व्यापक बनने के योग्य बनाता है। देरिदा कहता है कि 'शब्दकेन्द्रवादी' सिद्धान्त के अनुसार वाक् अर्थ का मौलिक संकेतक है और लिखित शब्द उच्चरित शब्द से व्युत्पन्न होता है। इसलिए लिखित शब्द उच्चरित शब्द का प्रतिनिधान होता है। शब्दकेन्द्रवादी दृष्टि से भाषा का उद्भव विचार-प्रक्रिया के रूप में होता है जो वाक् को जन्म देती है और तब यह वाक् लेखन को जन्म देता है। 'शब्दकेन्द्रवाद' पाठों, सिद्धान्तों, प्रतिनिधान के माध्यमों तथा संकेत व्यवस्थाओं की ऐसी विशेषता है जो प्रत्यक्ष और बिना किसी मध्यस्थ के अर्थ को स्थगित करते हुए ज्ञान और अस्तित्व की इच्छा उत्पन्न करती है।

'लोगोसेंट्रिज़्म' या 'शब्दकेन्द्रवाद' विचार, वाक् और लेखन के मध्य विशिष्ट और जटिल सम्बन्ध को प्रकट करने वाला पद है। व्युत्पत्तिपरक और ऐतिहासिक दृष्टि से 'शब्दकेन्द्रवाद' विचारों की उस व्यवस्था को बताता है जो 'शब्द' (logos) की स्थिरता और प्रभाव के आधार पर निर्मित हुई है। प्राचीन यूनानी दर्शन और ईसाई धर्मशास्त्र के अनुसार 'logos' का प्रयोग 'ईश्वर के शब्दों' (वाणी – जिससे विश्व की रचना तथा विश्व-रचना की तार्किक व्याख्या हुई) के अर्थों में हुआ है। वाक् के रूप में 'logos' में भाषा और यथार्थ अन्तत: एक हो जाते हैं जिसमें पूर्ण प्राधिकार, विशुद्ध उद्भव और उच्चतम उद्देश्य निहित माना जाता है। शब्द केन्द्रित विचार अपने चिन्तन में 'शब्द' को प्राथमिकता और महत्त्व देता है। 'शब्द' और वचन या वाक् के मध्य स्पष्ट भेद किया जाता है। शब्दकेन्द्रवाद के अनुसार विमर्श की आवश्यकता के लिए पहले वाक् और बाद में लेखन द्वारा 'विचार' की मध्यस्थता की जाती है। इस प्रकार वाक् अर्थ का मौलिक संकेतक होता है, जबकि लेखन केवल संकेतक का संकेतक होता है। शब्दकेन्द्रवाद वाक् की इसी विशेषता के लिए उसे प्राथमिक मानता है।

उपस्थिति की मान्यता के कारण ही वाक् को लेखन पर तरजीह दी जाती है। देरिदा के अनुसार यही वाक्-केन्द्रिकता या 'वाक्-केन्द्रवाद' है। वाक् को प्राथमिक माना जाता है क्योंकि यह 'उपस्थिति' की सम्भावना के क़रीब है। 'वाक्-केन्द्रवाद' 'उपस्थिति' का ही प्रभाव है। वाक् और लेखन के विरोध को विखण्डित करते हुए देरिदा 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' का विखण्डन करता है।

### 5.4.06.2. उपस्थिति की अनुपस्थिति

विखण्डन की मुख्य परियोजना किसी भी पाठ में 'लोगोसेंट्रिज़्म' (शब्दकेन्द्रवाद) के परिचालन को प्रदर्शित करना है। विखण्डन 'उपस्थित' को विमर्श के प्रामाणिक सूचक के रूप में अत्यधिक महत्त्व दिए जाने से असहमत है। इसके स्थान पर वह इस बात पर ध्यान देता है कि भाषा किस प्रकार भेदों के खेल (संकेतक के अन्तरालन, फ़िसलन आदि) द्वारा अर्थ ग्रहण करती है। अपने आरम्भिक ऐतिहासिक लेख – 'स्ट्रक्चर, साईन एण्ड प्ले इन द डिस्कोर्स ऑफ़ द ह्यूमन साईन्सेज़' में देरिदा 'खेल' का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जो स्थिर और केन्द्रीकृत संरचनाओं को वैधता प्रदान करने वाली 'संरचनावाद की संरचना', ज्ञानातीत संकेतित पर प्रश्न खड़े

करता है। भाषा के भीतर भेदों का खेल केन्द्र या मूल के अभाव या 'अनुपस्थिति' द्वारा सम्भव होता है। यह पूरकता की क्रिया है। देरिदा के लिए पूरक का अर्थ कुछ जोड़ने से अधिक है, इसमें एक सम्पूर्णता दूसरी सम्पूर्णता को समृद्ध करती है। इसका अर्थ वैकल्पिक प्रतिस्थापन अर्थात् स्वयं को किसी के स्थान पर ले आना है। यदि यह किसी धारणा का निर्माण या प्रतिनिधित्व करती है तो ऐसा 'उपस्थिति की किसी पूर्ववर्ती अनुपस्थिति' के कारण है।

### 5.4.06.3. विभेदन या डिफ़रांस (Differance)

देरिदा का विखण्डन उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा के विरुद्ध अपनी आलोचना के अनन्तर आने श्लिष्ट पदों का प्रस्ताव करता है। इनमें सबसे प्रमुख पद है विभेदन' (डिफ़रांस)। 'डिफ़रांस' में डिफ़रेंस (भेद) और डिफ़रल (आस्थगन) शब्दों का अर्थ मिला हुआ है, जो बताता है कि भाषा में अर्थ की विभेदक प्रकृति किसी भी निश्चित अर्थ को निरन्तर रूप से स्थगित करती रहती है। डिफ़रांस (विभेदन) अपरिभाषेय है और 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' से इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। देरिदा ने 'डिफ़रांस' शब्द का निर्माण और प्रयोग उपस्थिति और अनुपस्थिति के उद्भव का वर्णन करने तथा यह दिखाने के लिए किया है कि कैसे कोरे शब्द सम्पूर्ण अर्थ सम्प्रेषित नहीं करते हैं। 'डिफ़रांस का अर्थ स्थगित किए जाने की स्थिति या गुण ही नहीं है, बल्कि अलग होने की स्थिति या गुण भी है। यह उपस्थिति और अनुपस्थिति के विरोध की दशा है। शब्द हमें वक्ता के विचार का कुछ संकेत तो देते हैं, लेकिन एक उच्च स्तरीय अर्थ को स्थगित भी करते हैं। वे वक्ता के कथन को वार्तालाप या विमर्श के अगले कुछ समय तक के लिए स्थगित कर देते हैं। 'डिफ़रांस' यह बताता है कि शब्दों के अर्थ भाषा में अन्य शब्दों के क्रम में तथा शब्द की समकालिक और ऐतिहासिक परिभाषाओं के संघर्ष द्वारा प्राप्त होते हैं।

देरिदा ने पाठ की व्याख्या के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है कि "पाठ के बाहर कुछ नहीं है"। ऐसा कहने का आशय यह है कि सन्दर्भ से बाहर कुछ नहीं। उसके कथन का अर्थ सन्दर्भ की अपरिहार्यता से है, जो 'विभेदन' का केन्द्र बिन्दु है। उदाहरण के लिए, यदि कोई बिना किसी सन्दर्भ के केवल घर बोलता है तो हम सही-सही नहीं समझ सकते कि वह क्या कहना चाहता है। घर शब्द का वास्तविक अर्थ उसके प्रत्यक्ष विवरण या परिभाषा के स्थान पर 'घर' की परम्परागत छवि तथा इसके लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्दों के साथ तुलनात्मक सम्बन्ध के आधार पर निर्धारित होता है, जैसे 'नया घर', 'अपना घर', 'मिट्टी का घर' आदि। घर से सम्बन्धित अन्य शब्द जैसे 'भवन' या 'मकान' आदि कहे जाने पर (संकेतक-संकेतित के सम्बन्ध के अनुसार) उनके अलग-अलग अर्थ हमारे सामने आ जाते हैं। वस्तुत: यहाँ मुख्य विचार यह दर्शाना है कि अर्थ बहुत जटिल और क्षणजीवी होता है। भाषा में एक संकेतक दूसरे संकेतक से भिन्न होता है और वह दूसरे को स्थगित करता रहता है। कोई भी संकेत अपने आप में पूर्ण नहीं होता है, उसका अधिकांश कहीं और होता है और वह वहाँ भी कभी पूरा नहीं होता है। उसमें कोई कमी, कोई अपूर्णता सदैव बनी रहती है। अत: कोई भी सत्ता पूर्ण नहीं है। 'विभेदन' वाक् और लेखन तथा शब्द के आन्तरिक अर्थ और बाह्य प्रतिनिधित्व के बीच की योजक कड़ी है।

## 5.4.06.4. पदचिह्न या निशान (Trace)

डिफ़रांस या 'विभेदन' का विचार अपने साथ 'पदचिह्न' या 'निशान' का विचार भी लेकर आता है। 'निशान' (Trace) वह है जिससे एक संकेत भिन्न होता है और जिसे वह स्थगित करता है। यह संकेत की उपस्थिति का अनुपस्थित हिस्सा है, अर्थात् 'निशान' अनुपस्थित वस्तु द्वारा अपने से पूर्व की उपस्थिति के दृश्यपटल से गुज़रने के बाद छोड़ा गया संकेत है। प्रत्येक उपस्थित स्वयं को उपस्थित पाने के लिए एक अनुपस्थित के निशान रखता है जो उसे परिभाषित करता है। इसका निहितार्थ यह है कि मूल उपस्थित को मूल निशान रखने होते हैं – उस अतीत के उपस्थित निशान जो कभी घटित नहीं हुआ, वह शुद्ध और निरपेक्ष अतीत। देरिदा कहता है कि स्वयं निशान का अस्तित्व नहीं होता है क्योंकि वह आत्मनाशी है। स्वयं को उपस्थित करने में वह नष्ट हो जाता है। पाश्चात्य चिन्तन में सभी संकेतकों को उपस्थित माना जाता है, अत: उनमें अन्य (अनुपस्थित) संकेतकों के निशान आवश्यक रूप से होते हैं। संकेतक न तो पूर्ण रूप से उपस्थित होते हैं, न ही पूर्ण रूप से अनुपस्थित।

परम्परागत दर्शनों का मुख्य ध्यान 'उपस्थिति' पर था। उपस्थिति का सम्बन्ध वास्तविक घटनाक्रमों, आमने-सामने के विचार-विमर्श या व्यक्ति के अस्तित्व से है। यह जीवन का सार या वास्तविकता है। लेकिन देरिदा का दावा है कि 'उपस्थिति' जैसी कोई चीज़ नहीं होती है। हमें जो भी अनुभव या प्रत्यक्षीकरण होता है वह जैसा दिखाई देता है (या अनुभव होता है) शुद्ध रूप में वैसा नहीं होता है। किसी भी विशुद्ध वार्तालाप, मानवीय अनुभव या कला का अस्तित्व नहीं होता है। विश्व के बारे में हमारा सम्पूर्ण ज्ञान विचारों और अवधारणाओं की मध्यस्थता द्वारा हमें उपलब्ध होता है। इसलिए देरिदा का विचार है कि हमें इस दार्शनिक कल्पना को त्याग देना चाहिए कि हम किसी भी चीज़ का उसके शुद्ध रूप में, उसकी 'उपस्थिति' के रूप में, अनुभव कर सकते हैं। इसके स्थान पर हमें स्वीकार करना चाहिए कि जो भी है वह बहुत सारे ट्रेस (पदचिह्न या निशान) हैं। उसके अनुसार हम जो भी अनुभव करते हैं वह किसी उपस्थिति के पदचिह्न या निशान मात्र हैं। अवधारणाओं और पाठों के रूप में मध्यस्थता का अर्थ यह है कि चीज़ें और उनका ज्ञान हम तक देरी से पहुँचता है। हमारा प्रत्येक अनुभव अप्रत्यक्ष और अधूरा होता है। हम अपने आस-पास जो भी देखते और अनुभव करते हैं वह वस्तुतः बीती हुई चीज़ों और घटनाओं का अभिलेखन या अंकन है। ये अतीत में कभी अपने शुद्ध और वास्तविक रूप में थीं, लेकिन हमारे अनुभव में उनके निशान ही आते हैं। ट्रेस किसी अनुपस्थित के निशान हैं जो कभी उपस्थित या विद्यमान था ही नहीं। इसकी उपस्थिति अनुपस्थित के साथ इसके सम्बन्ध से बनती है। भाषा की अर्थवत्ता को समझने के लिए देरिदा का सूत्र है – भाषा निशानों का खेल है। देरिदा के इन विचारों से जीवन और दुनिया के बारे में एक शुष्क और नीरस दृष्टिकोण बनता लगता है, जिसमें कुछ भी शुद्ध नहीं, मौलिक नहीं, सुन्दर और पूर्ण नहीं। लेकिन देरिदा मध्यस्थता को बुरा नहीं मानता है। वह कहता है कि यह और यही जीवन है।

### 5.4.07. लेखन की प्रतिष्ठा

देरिदा के समस्त लेखन का उद्देश्य संरचनाओं के भीतर दबे हुए तत्त्वों को खोज कर विमर्श के केन्द्र में लाना और उन्हें उनकी ऐतिहासिक भूमिका प्रदान करना है। इस कोशिश में वह संरचना के दमनकारी तत्त्वों को अनावृत्त करता है और दमित तत्त्व को महत्त्व देकर उभारता है। युग्मक विरोधों के पदानुक्रम को उलटने की उसकी रणनीति इसी कोशिश का हिस्सा है। 'शब्दकेन्द्रवाद' की आलोचना और लेखन को वाक् केन्द्रित बनाने की अवधारणा का विरोध वस्तुत: लेखन को प्रतिष्ठित करने का उद्यम है।

### 5.4.07.1. वाक् बनाम लेखन

देरिदा के चिन्तन मुख्य उद्देश्य 'लेखन' के महत्त्व को स्थापित करना है। वह लेखन को सांस्कृतिक जीवन का मुख्य स्रोत मानता है। उसके अनुसार लेखन को सभी संकृतियों और दर्शनों ने दबाया है और उसे वाक् से दोयम दर्ज़े की चीज़ माना है। वह लेखन को सभी तरह के वर्चस्व के विरुद्ध एक उग्र कार्यवाही मानता है। लेखन के महत्त्व को स्थापित करने के लिए देरिदा ने पाश्चात्य संस्कृति में वाक् को सभी विमर्शों में केन्द्रीय महत्त्व दिए जाने के विरुद्ध संघर्ष किया है।

फ़्रांसीसी प्रबोधन दार्शनिक रूसो के लेखन में, समाज और संस्कृति को भ्रष्ट और दमनकारी शक्ति के रूप में विवेचित किया गया है। इनका विकास प्रकृति की ग्राम्य अवस्था से हुआ है और जिनमें मनुष्य आत्म-निर्भर तथा एक-दूसरे से अलग-अलग शान्तिपूर्ण एकान्त में निवास करते हैं। इसलिए रूसो प्रकृति का अस्तित्व संस्कृति से पहले मानता है। रूसो ने संगीत के विवेचन के दौरान वाक् की प्राथमिकता प्रतिपादित की थी और बताया था कि संगीत 'प्राथमिक' वाक् है। रूसो के लिए वाक् प्राथमिक है क्योंकि यह प्राकृतिक है। यही भाषा का आधार है। लेखन प्राकृतिक न होकर व्युत्पन्न होता है, इसलिए वह अभिव्यक्ति का एक कमज़ोर ढंग है। लेखन वाक् का पूरक है जो वाक् को ही भ्रष्ट कर देता है। रूसो प्रकृति को संस्कृति से प्राथमिक और मनुष्य के लिए अधिक कल्याणकारी मानता है। लेखन संस्कृति का हिस्सा होने के कारण रूसो के लिए दोयम हो जाता है, वाक् प्रकृति का हिस्सा होने के कारण प्रथम और महत्त्वपूर्ण है। देरिदा रूसो के चिन्तन में अन्तर्विरोधों को उजागर करता है और बताता है कि रूसो के अनुसार यदि प्रकृति का हिस्सा होने से वाक् प्राथमिक है तो प्रकृति वाक् से प्राथमिक हुई। अर्थात् वाक् से पहले भी कोई तत्त्व है जिसकी क़ीमत पर वाक् को भाषा का उत्स माना गया है। यदि लेखन एक पूरक है तो वह किसी अभाव को पूरा करने के लिए है यानी उससे पहले की कोई चीज़ अपूर्ण थी, उसमें कुछ कमी थी जिसे पूरा किया जा रहा है। यह रूसो के चिन्तन का अन्तर्विरोध है।

देरिदा का तर्क है कि जब रूसो किसी घटना या क्रिया का वर्णन करता है तो वह 'पूरक' पर भरोसा करता है। जब प्रकृति को आत्म-निर्भर बताया जाता है तब भी उसे संस्कृति की आवश्यकता होती है। रूसो का विश्वास था कि वाक् मौलिक, स्वस्थ और भाषा की सर्वाधिक प्राकृतिक दशा थी। लेखन केवल व्युत्पन्न और संचार का दुर्बल माध्यम है। देरिदा कहता है कि स्वयं रूसो का लेखन 'लेखन' की प्राथमिकता की पुष्टि करता है। रूसो के

लेख उसी बात को स्वीकार करते हैं जिसे रूसो इन्कार करता है। उसके लेखों का वह अर्थ नहीं होता है जो वे बताते हैं या उनका जो अर्थ निकलता है वैसा वे कहते नहीं हैं।

माना जाता है कि विचार अपने आप किसी को आन्तरिक रूप से बोलते हुए सुनना है, न कि स्वयं का लिखा हुआ पढ़ना। यह विचार-प्रक्रिया वाक् को प्राथमिक मानवीय संचार-माध्यम बना देती है और लेखन को द्वितीयक – एक ऐसा पदानुक्रम, जिसे प्लेटो से लेकर सॉस्सुर तक सभी पाश्चात्य दार्शनिक, भाषावैज्ञानिक और माध्यम-विशेषज्ञ विस्तार से समझते-समझाते चले आए हैं। शब्दकेन्द्रवाद के विरुद्ध देरिदा का प्रतिवाद इस प्रकार के पदानुक्रम की व्यवस्था का विशद् विवेचन है। देरिदा के अनुसार शब्दकेन्द्रवाद ऐसा सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत लेखन को वाक् से बाहर माना गया है और वाक् को विचार से बाहर माना गया है। यदि लेखन केवल वाक् का प्रतिनिधान है तब लेखन केवल एक संकेतित का एक संकेतक है। इस प्रकार शब्केन्द्रवाद के लिए लेखन भाषा का मात्र व्युत्पन्न रूप है जो इस प्रकार से अपना अर्थ प्राप्त करता है। यहाँ भाषा के विकास में वाक् को केन्द्रीयता और महत्त्व दिया गया है, जबकि लेखन को हाशिये पर धकेल दिया गया है। देरिदा बताता है कि शब्दकेन्द्रवादी सिद्धान्त के अनुसार वाक् एक प्रकार की उपस्थिति है क्योंकि श्रोता के लिए वक्ता साथ-साथ उपस्थित रहता है लेकिन लेखन एक प्रकार की अनुपस्थिति है क्योंकि वहाँ लेखक पाठक के लिए साथ-साथ उपस्थित नहीं होता है।

### 5.4.07.2. वाक् केन्द्रवाद की आलोचना

वाक् केन्द्रवादी सिद्धान्त में लेखन को लेखक और पाठक की समानान्तर उपस्थिति का विकल्प मान लिया जाता है। यदि पाठक और लेखक समानान्तर रूप से उपस्थित होते तो लेखक पाठक से लेखन के स्थान पर बोलकर (वाणी द्वारा) संचार करता। इस प्रकार शब्दकेन्द्रवाद यह दिखाता है कि लेखन वाक् का विकल्प है और लेखन वाक् की उपस्थिति को बहाल करने का प्रयास है। देरिदा 'वाक् बनाम लेखन' के युग्मक विरोध का विखण्डन करता है। वह इस युग्मक विरोधी में वाक् को उच्चतर हैसियत दिए जाने (वाक्-केन्द्रवाद) का विरोध करता है क्योंकि वाक्-केन्द्रवाद मानता है कि वक्ता की उपस्थिति बातचीत या संचार को अधिक प्रत्यक्ष और शुद्ध बनाती है। देरिदा के अनुसार यदि कोई 'ज्ञानातीत संकेतित' नहीं है, कोई वस्तुनिष्ठ सत्य नहीं है, तब ऐसे युग्मक स्थिर और स्थायी नहीं हैं। ये अस्थिर और परिवर्तनीय हैं। इन्हें उलटा जा सकता है। देरिदा 'वाक् बनाम लेखन' के युग्मक विरोधी का पदानुक्रम ही नहीं बदलता, बल्कि तर्क प्रस्तुत करता है कि लेखन तो वाक् से पहले ही आता है और वाक् लेखन का एक रूप है। जब हम वाचिक संकेत की व्याख्या करते हैं, उसका अर्थ ग्रहण करते हैं तब हम संकेतक के शुद्ध रूप कि पहचान के द्वारा ऐसा करते हैं। इस संकेतक को उच्चारण की भिन्नता के बावजूद बार-बार दोहराया और पहचाना जा सकता है। पुनरावृत्ति के योग्य होना मूलत: लेखन की विशेषता है, क्योंकि वाक् तो उच्चरित होते ही हवा में ग़ायब हो जाता है।

देरिदा कहता है कि जब दोहराए जा सकने वाले संकेतक में लेखन की विशेषताएँ हैं, तो वाक् विशेष प्रकार का लेखन ही हुआ। इतना ही नहीं, देरिदा के अनुसार ये युग्मक परस्पर पूर्ण रूप से पृथक् नहीं होते है, एक

दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण भी करते हैं। उन्हें पूरी तरह पृथक् करने में भाषा के लिए कई अन्तर्विरोध और साहचर्य बीच में आते हैं। जब वे उपस्थिति पर ज़ोर देते हैं तब साथ-साथ जो अनुपस्थित है उसकी याद भी दिलाते हैं और इस प्रकार एक दूसरे के पूरक बनते हैं। देरिदा युग्मक विरोधों के इस अस्थिर सम्बन्ध को 'पूरकता' कहता है, जिसमें प्रत्येक शब्द दूसरे में कुछ जोड़ता है और उसका स्थान ले लेता है। लेखन भी न केवल वाक् में कुछ जोड़ता है, बल्कि उसका विकल्प भी बनता है, भले ही यह विकल्प कभी सही और सटीक न हो।

### 5.4.08. संरचनावाद का विखण्डन

सॉस्सुर के संकेत सिद्धान्त में संकेत के विशुद्ध विभेद पर बल दिया गया है, लेकिन संकेतक (व्यंजक) और संकेतित (व्यंजना) के मध्य स्पष्ट भेद किया गया है। संकेतक विचार है और संकेतित उसका भौतिक या शाब्दिक रूप। यहाँ संकेतक पहले से विद्यमान संकेतित को सामने लाने के लिए होता है। सॉस्सुर के भाषाविज्ञान में संकेत को एक इकाई माना गया है, लेकिन देरिदा की दृष्टि में शब्द और वस्तु या विचार कभी भी एक नहीं हो सकते। देरिदा की भाषा-दृष्टि में संकेतक सीधे-सीधे संकेतित से सम्बन्धित नहीं हैं। वह संकेत को भेद की एक संरचना के रूप में देखता है जहाँ उसका आधा भाग 'वहाँ नहीं' होता है तथा दूसरा आधा भाग सदैव 'वही नहीं' होता है। संकेतक और संकेतित निरन्तर अलग होते रहते हैं और नए रूप में पुनः जुड़ते रहते हैं। यह प्रक्रिया सॉस्सुर के मॉडल की अनुपयुक्तता प्रकट करती है जिसके अनुसार संकेतक और संकेतित एकमेक रहते हैं। विखण्डन के अनुसार संकेतक और संकेतित में स्थाई अन्तर नहीं होता है। संकेतक संकेतित में और संकेतित संकेतक में बदलते रहते हैं, कभी कोई अन्तिम संकेतित नहीं प्राप्त होता जो स्वयं संकेतक नहीं हो। जब हम किसी संकेत को पढ़ते हैं तो उसका अर्थ हमें तुरंत स्पष्ट नहीं होता है। संकेत एक अनुपस्थित कासन्दर्भ देता है, अर्थात् अर्थ भी अनुपस्थित है। अर्थ निरन्तर संकेतकों की शृंखला के साथ चलते रहते हैं और हमें उनके वास्तविक स्थान का पता नहीं चलता है, क्योंकि अर्थ किसी विशेष संकेत के साथ बंधा हुआ नहीं रहता है। उदाहरण के लिए, जब हम एक संकेतक का अर्थ या संकेतित जानना चाहते है तब हम उसे शब्दकोश में ढूँढते हैं लेकिन वहाँ हमें एक के बाद एक संकेतक ही मिलते हैं। यह प्रक्रिया अन्तहीन और वर्तुल है अर्थात् संकेतित की खोज में हम वापस उसी संकेतक के पास पहुँच जाते हैं और वही प्रक्रिया पुनः शुरू हो जाती है। संकेतित संकेतक ही रह जाता है, हम अन्तिम रूप से किसी ऐसे संकेतित को प्राप्त नहीं करते जो संकेतक न हो। देरिदा कहता है कि सॉस्सुर ने संकेतक और संकेतित के मध्य जो स्पष्ट भेद किया है तथा संकेतित को जो महत्त्व दिया है उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। साथ ही सॉस्सुर के सिद्धान्त में संकेत व्यवस्था का जो पदानुक्रम है उसे भी बदलना होगा।

### 5.4.09. पाठ से बाहर कुछ नहीं है

देरिदा ने 'ऑफ़ ग्रमैटॉलजी' में रूसो पर अपने विवेचन के अन्तर्गत यह अभिकथन किया कि "पाठ से बाहर कुछ नहीं है"। इसे यूँ समझा गया कि देरिदा की दृष्टि में भाषा से बाहर कुछ नहीं है और वह केवल शब्दों का ही अस्तित्व मानता है और किसी का नहीं। ऊपर हमने देखा है कि देरिदा संकेतित की अन्तिमता पर भी प्रश्न उठाता है और प्रस्तावित करता है कि भाषा में हम एक संकेतक से दूसरे संकेतक तक आते-जाते रहते हैं तथा इस

प्रक्रिया में अन्तिम अर्थ या संकेतित सदैव भ्रामक बना रहता है। सॉस्सुर ने बताया था कि अपने विशिष्ट गुणों और भेदों के कारण 'संकेत' बाह्य दुनिया में मौजूद अर्थ का सन्दर्भ देते हैं , लेकिन देरिदा ने तर्क दिया कि भाषा से बाहर कुछ भी नहीं है, भाषा का सन्दर्भ स्वयं भाषा ही है। शब्द किसी ऐसे अर्थ को नहीं बताते हैं जो भाषा के परिक्षेत्र से बाहर हो।

शब्दकेन्द्रवाद की चर्चा के दौरान हम यह जान चुके हैं कि देरिदा वाक् को लेखन पर तरजीह देने की आलोचना करता है। उसका तर्क है कि भाषा और मानवीय विकास के सिद्धान्तकारों द्वारा किए गए इस कार्य ने भाषा की समस्या और उपस्थिति के साथ उसके सम्बन्ध को उलझा दिया है। इस मुद्दे पर विखण्डन वाक्-केन्द्रवाद की आलोचना तथा 'लेखन के सामान्य विज्ञान' के विस्तार के रूप में उभर कर आता है। इस विशेष अर्थ में लेखन भाषा के भीतर भेदों के खेल के रूप में प्रस्तुत होता है। इस प्रक्रिया को समझाने के लिए देरिदा यहाँ 'डिफ़रांस' नाम से एक नया पद प्रस्तुत करता है जो भाषा की अनिश्चित और अननुमेय दशा को प्रकट करता है। इसमें संकेतक अन्तहीन रूप से एक दूसरे को संदर्भित करते रहते हैं। अर्थवत्ता की मुक्त क्रीड़ा उपस्थिति या ज्ञानातीत संकेतित की सम्भावना को समाप्त कर देती है, लेकिन यह इस दावे को स्वीकार नहीं करती कि केवल भाषा का ही अस्तित्व है या भौतिक संसार कोई इन्द्रजाल या शब्दों का भ्रम है।

देरिदा की प्रसिद्ध टिप्पणी कि "पाठ से बाहर कुछ नहीं है", भौतिक और गोचर जगत् का खण्डन नहीं है। वस्तुत: यह पाठ की क्रान्तिकारी सत्तामीमांसा की घोषणा है। विखण्डन पाठ के वितान में, उसकी टूट-फूट के क्षणों में, जिन पर पाठ स्वयं संदेह पैदा करता है उन अपारताओं और असमंजस में होता है। विखण्डन इन दशाओं में ही सम्भव होता है। अस्थिरता के ये क्षण किसी भी पाठ में निहित दार्शनिक, नैतिक, वैज्ञानिक और आलोचनात्मक मान्यताओं के विश्लेषण का आधार प्रदान करते हैं। एक उपयुक्त भाषा, एक ऐसी भाषा जो संसार की वस्तुओं और घटनाओं का विश्वसनीय ढंग से प्रतिनिधित्व करती हो, की परिकल्पना ही वह मुख्य चीज़ है जिसकी आलोचना विखण्डन करता है। सार्थक रूप से संगठित सभी पाठों को आन्तरिक स्तर पर असंगत और बिखरे हुए देखा जा सकता है। यह असंगतता और बिखराव, असमंजस या ऊहापोह ही उन पाठों के संघटक तत्त्व हैं।

**5.4.10. पारिभाषिक शब्दावली**

(1) खेल (play) :

देरिदा ने अपने व्याख्यान "स्ट्रक्चर, साईन एण्ड प्ले इन द डिस्कोर्स ऑफ़ द ह्यूमन साइंस" में परम्परागत दर्शनों के 'युग्मक विरोधों' की अवधारणा पर प्रश्न खड़े किए थे। वह विरोधों की एक अनवरत शृंखला का विचार प्रस्तुत करता है। इसे वह 'प्ले' यानी खेल कहता है। खेल का मूल विचार यह है कि शब्द का कोई भी अर्थ स्थायी नहीं होता है, क्योंकि शब्दों की तरह उनके पीछे के विचार भी निरन्तर बदलते रहते हैं। इसलिए चाहे हम अपने शब्दों और उनके अर्थों को स्थिर रखना चाहें या न चाहें, सभी तरह का अर्थ-निर्माण और अभिव्यंजना खेल का शिकार हो जाती है। हमारी भाषा उछृंखल बच्चों के समूह की तरह है जो पकड़ में नहीं आते हैं। मनुष्य कुछ

भी कर ले, भाषा किसी को भी यह कहने का अवसर नहीं देती कि 'खेल ख़त्म हुआ'। खेल तो चलता रहेगा और बदलता रहेगा।

(2) आद्य-लेखन (arche-writing) :

आद्य-लेखन शब्द का प्रयोग देरिदा द्वारा भाषा के एक रूप का वर्णन करने के लिए किया गया है जिसे 'उपस्थिति की तत्त्वमीमांसा' के अन्तर्गत नहीं समझा जा सकता है। आद्य-लेखन भाषा का मौलिक स्वरूप है जो वाक् से व्युत्पन्न नहीं है। यह भाषा का ऐसा रूप है जो वाक् और लेखन के भेद से अबाधित और अप्रभावित है। यह भाषा के लिखित और अलिखित रूप के मध्य भेद की अस्थिरता की दशा भी है।

(3) पूरक (supplement) :

देरिदा ने यह शब्द रूसो से लिया है। रूसो स्वयं में पूर्ण वस्तु में ग़ैर-ज़रूरी अतिरिक्त तत्त्व जोड़ने को पूरक कहता है। देरिदा का तर्क है कि जो वस्तु स्वयं में पूर्ण है उसमें अतिरिक्त कुछ भी नहीं जोड़ा जा सकता, इसलिए एक पूरक वहीं आता है जहाँ मूल रूप से कुछ कमी होती है। युग्मक विरोधों में दूसरा पद पहले पद की कमी को भरने के लिए अस्तित्व में होता है। देरिदा के लिए पूरक के तर्क से पूर्व कुछ नहीं है। यदि कोई पूरक से वापस स्रोत की ओर जाना चाहे तो उसे यह पता चलेगा की स्रोत पर भी एक पूरक है।

(4) उद्भव (origin) :

परम्परागत दर्शनों के पास सभी चीज़ों के उद्भव और मौलिकता की कहानियाँ थीं। जीवन से लेकर भाषा, पाठ तथा प्रेम और घृणा जैसे भावों के विशुद्ध उद्भव की कहानियाँ। शुद्ध आत्मा का अस्तित्व, मानने भर से होने का विचार, अक्षर से पहले वाणी का अस्तित्व आदि इसी प्रकार की बातें थीं। देरिदा ने कहा कि ऐसा कुछ भी नहीं होता है। उसके अनुसार चीज़ों के अर्थ की तरह उनका उद्भव या मौलिकता भी सदैव अस्थिर, बहुस्तरीय और परिवर्तनीय होती है, इसलिए उसकी पहचान असम्भव है।

(5) पाठ (text) :

पाठ भी एक बहुत ही जटिल अवधारणा है। देरिदा ने घोषणा की कि "पाठ से बाहर कुछ नहीं है"। इसका यह अर्थ ले लिया गया कि देरिदा कहना चाहता है कि सम्पूर्ण विश्व एक पाठ है और पदार्थ या विषयवस्तु जैसी कोई चीज़ नहीं है, हमारे चारों ओर जो कुछ भी है वह शुद्ध पाठ है। लेकिन देरिदा का ऐसा आशय बिलकुल नहीं था। "पाठ से बाहर कुछ नहीं है" कहने से उसका आशय था कि विश्व का कोई भी रूप या हिस्सा लिखित अवधारणाओं और विचारों के पाठ के रूप में किसी न किसी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष माध्यम के द्वारा ही हमारे अनुभव-संसार का हिस्सा बनता है। अत: पाठ से बाहर होने का अर्थ अपने मन-मस्तिष्क से बाहर होना है।

(6) ज्ञानातीत संकेतित (transcendental signified) :

संकेतित कोई स्वतंत्र सत्ता न होकर अनेक संकेतकों की अन्योन्य क्रिया है। ज्ञानातीत संकेतित वह है जो संकेतकों के इस खेल से बच जाता है और जिसे विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। संकेतित के लिए ज्ञानातीत विशेषण का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि यह उस संकेतक क्रीड़ा से परे या स्वतंत्र होता है जो हर बार एक नया संकेतित पैदा करती है।

(7) ऊहापोह (aporia) :

अपोरिया या ऊहापोह शब्द असमंजस की उस स्थिति के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें पाठक के लिए पाठ का अर्थ समझना मुश्किल हो जाता है, उसे अर्थ ग्रहण करने में दुविधा होती हो या उसमें कोई अवरोध आ गया हो। 'ऊहापोह' पाठ के पारम्परिक या सम्भावित अर्थ तथा उसके वास्तविक या प्रस्तुत अर्थ के मध्य उत्पन्न अन्तराल या फ़ासले की अवस्था है। विखण्डन एक पाठ में उस 'ऊहापोह' (aporia) अर्थात् आन्तरिक विरोधाभास की खोज करता है जो उस पाठ के सुसंगत अर्थ के दावे को कमज़ोर बना देता है।

**5.4.11. पाठ का सारांश**

देरिदा ने पाश्चात्य दर्शन परम्परा का गहन अध्ययन किया था। प्लेटो, रूसो, नीत्शे, हेडेगर, हुसेर्ल, सॉस्सुर और लेवि स्ट्रॉस की आलोचना में उसने तर्क दिया कि वे अपने विचारों और विभिन्न व्यवस्थाओं को स्थापित करने में इसलिए सफल हुए क्योंकि उन्होंने भाषा के विघटनकारी प्रभावों को दबाया है या उनकी उपेक्षा की है। पाश्चात्य तत्त्वमीमांसा का एक प्रभावशाली भ्रम यह है कि तर्क किसी भी तरह से भाषा पर पूरा ध्यान दिए बिना ही दुनिया को समझ-समझा सकता है और एक शुद्ध, स्वत: प्रमाणित सत्य तक पहुँच सकता है। देरिदा इन दार्शनिकों के लेखन में प्रयुक्त रूपकों और अन्य चित्रात्मक तरीक़ों की ओर हमारा ध्यान दिलाता है जिनके माध्यम से भाषा इन दार्शनिकों के चिन्तन के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती है।

विखण्डन सामाजिक और भाषिक श्रेणियों की रणनीतिक उलट-पलट मात्र नहीं है। यह अध्ययन की एक ऐसी गतिविधि है जिसमें पाठ के पठन के ढंग में आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है। लेखक के दावों और पाठ के अर्थ के बीच दुविधा और विसंगति का होना बड़ी बात नहीं है। देरिदा अपने विचाराधीन चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत तर्कों में कई अन्तर्विरोध उजागर करता है। वह दिखाता है कि किस प्रकार कुछ विशेष प्राथमिकता प्राप्त शब्द प्रभुत्वशाली रूपकों के बल पर उच्च स्थान प्राप्त कर लेते हैं। ये रूपक पाठ की तार्किकता को अस्त-व्यस्त कर देते हैं।

विखण्डन हमें यह बताता है कि यदि कोई पाठ स्वयं से बाहर का कोई सन्दर्भ देता है तो यह सन्दर्भ कोई दूसरा पाठ ही हो सकता है। जैसे एक संकेत दूसरे संकेत का सन्दर्भ देता है वैसे ही एक पाठ दूसरे पाठ का सन्दर्भ देता है और इस प्रकार अन्तरपाठीयता का एक अनन्त विस्तृत जाल बन जाता है। किसी भी पाठ की कितनी ही

व्याख्याएँ हो सकती हैं और कोई भी व्याख्या अन्तिम और पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकती। देरिदा सत्य को नकारता नहीं है, बल्कि वह सत्य की प्रकृति के सम्बन्ध में कोई दावा नहीं करता। देरिदा विश्व के किसी प्रत्यक्ष और विशुद्ध ज्ञान की अनुपलब्धता पर ज़ोर देता है। वह विचार और अवबोधन को सांस्कृतिक रूप से निर्मित मानता है, प्राकृतिक नहीं। ज्ञानोदयी चिन्तन के नैतिक मूल्यों और सत्य के दावों की आलोचना करते हुए भी देरिदा उसका व्यापक रूप में समर्थन करता है।

विखण्डन पाश्चात्य चिन्तन के अन्तर्विरोधों और विसंगतियों को उजागर करता है और परम्परागत पदानुक्रम को उलटने का आग्रह करता है, लेकिन यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि विखण्डन अपनी प्रकृति से ही स्वयं को विखण्डित करता चलता है। विसंगतियों को उजागर करने वाली (यह) पद्धति स्वयं विसंगत साबित की जा सकती है। वस्तुत: यह संदेह और संशयवाद पर आधारितसैद्धान्तिकी है जो व्यवस्था को प्रश्नांकित करती है।

**5.4.12. उपयोगी सन्दर्भ**

**5.4.12.1. हिन्दी की पुस्तकें**

1. पचौरी, सुधीश.( 2006). देरिदा : विखण्डन की सैद्धान्तिकी. नई दिल्ली. वाणी प्रकाशन. ISBN : 978-81-8143-518-7

**5.4.12.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें**

1. Cullar, Jonathan .(1982) . On Deconstruction :Theory and Criticism after Structuralism. New York. Cornell University Press. ISBN: 0-8014-9201-7

2. Kates, Joshua.(2005). Jacques Derrida and the Development of Deconstruction. Evanston,Illinois, USA. Northwestern University Press. ISBN: 0-8101-2327-4

3. Lodge, David & Wood, Nigel (ed).(2007). Modern Criticism and Theory : A Reader . New Delhi. Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. ISBN : 978-81-317-0721-0

4. Norris, Christopher. (2002). Deconstruction :Theory and Practice.

5. New York. Routledge. ISBN : 0-415-28010-9

6. Royle, Nicholas. (2003). Jacques Derrida . New York. Routledge. ISBN : 0-415-22931-6

7. Selden, Raman (ed).(1995). The Cambridge History of Literary Criticism (Volume 8) : From Formalism to Poststructuralism. Cambridge, U K . Cambridge University Press. ISBN: O-521-3OOI3-4 (V. 8)

### 5.4.12.3. इंटरनेट स्रोत

1. http://www.marxist.org.reference/subject/philosophy/works/fr/derrida/htm

2. http://www.iep.utmedu/deconst/&grqid=pDsjcmze&hl=en-IN

### 5.4.13. अभ्यास के लिए प्रश्न

1. विखण्डन का अर्थ और उद्देश्य क्या है ?
2. विखण्डन कि परिभाषा की समस्या पर विचार कीजिए।
3. संरचना के सन्दर्भ में 'युग्मक विरोधी' की व्याख्या कीजिए।
4. देरिदा द्वारा प्रस्तुत शब्दकेन्द्रवाद की आलोचना पर प्रकाश डालिए।
5. "पाठ से बाहर कुछ नहीं है।" देरिदा के इस कथन की व्याख्या कीजिए।
6. 'उपस्थिति' और 'पदचिह्न या निशान' के सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।
7. "विखण्डन का मुख्य उद्देश्य 'लेखन' के महत्त्व को स्थापित करना है।" कैसे ? समझाइये।

---

❖❖❖